ब्रह्माण्ड महापुराण में शिवतत्त्व

नारद महापुराण (पू. ख. चतुर्थपाद, अध्याय 109) के वर्णनानुसार ब्रह्माण्ड पुराण भविष्य कल्पों की कथा से युक्त बारह हजार श्लोकोंवाला है। इसके चार पाद हैं। पहला 'प्रक्रियापाद' दूसरा 'अनुषंगपाद' तीसरा 'उपोद्घातपाद' और चौथा 'उपसंहारपाद' है। पहले के दो पादों को पूर्व भाग कहा गया है। तृतीयपाद ही मध्यम भाग है और चतुर्थपाद उत्तर भाग माना गया है। चौथे पाद के बाद 'ललितोपाख्यान' परिशिष्ट के रूप में पाया जाता है।

इस पुराण को आमतौर पर शैवपुराण माना जाता है परन्तु इसमें देवी तथा विष्णु के माहात्म्य की विस्तृत चर्चा को देखते हुए ऐसा मानना न्यायसंगत नहीं लगता। इस पुराण के सभी अध्यायों के अनेकों श्लोक वायु पुराण में यथावत् या किंचित् परिवर्तन के साथ प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ ब्रह्माण्ड पुराण के पूर्वभाग के 'अनुषंगपाद' में वर्णित 25 वाँ एवं 26 वाँ अध्याय तथा मध्य भाग के 'उपोद्घातपाद' में वर्णित 71वाँ तथा 72वाँ अध्याय वायु पुराण के क्रमशः पूर्वार्द्ध के 'उपोद्घातपाद' के 54वें तथा 55वें तथा उत्तरार्द्ध के 'अनुषंगपाद' के 34वें तथा 35वें अध्याय शब्दों के नगण्य अन्तर के साथ सर्वथा समान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि 'वायु पुराण' से इसकी कई अंशों में समानता होने के कारण ही इसे शैवपुराण माना जाता है, क्योंकि 'वायु पुराण' स्पष्टरूप से शैवपुराण है।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण में शिव को ही परमतत्त्व या ब्रह्म स्वीकार किया गया है। इसमें ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की ही चर्चा मिलती है। समुद्रमन्थन से निकले विष की ज्वाला के बारे में ब्रह्माजी देवताओं आदि से कहते हैं कि महादेवजी के सिवा न तो मैं, न तो विष्णु और न अन्य कोई प्रमुख देव इस विष की ज्वाला को सहन कर सकता है। अतः शिव को विषपान के लिये राजी करने हेतु ब्रह्मा ने ॐकारस्वरूप शिव को यादकर उनके चतुर्दिक प्रकाश का ध्यानकर उनकी स्तुति करना आरंभ किया।

उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को हाथ में पिनाक एवं वज्र धारण करनेवाले, त्रिलोचन, भूतपति, देवशत्रुहन्ता, सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि को नेत्ररूप में धारण करनेवाले, ब्रह्मा, रुद्र एवं विष्णु रूपवाले, सांख्य एवं योगस्वरूप, सभी भूतों की आत्मा, देवदेव, जटाधारी, कपालधारी, वर देनेवाले, शुद्ध, मुक्त, अनेक नेत्रोंवाले, रजस एवं सत्त्वरूप, अव्यक्तयोनि, नित्य, अनित्य व नित्यानित्य स्वरूपवाले, व्यक्त, अव्यक्त तथा व्यक्ताव्यक्त रूपवाले, चिन्त्य, अचिन्त्य व चिन्त्याचिन्त्य रूपवाले, जगत् के दुःखों को दूर करनेवाले, नारायण के प्रिय, बहुरूपधारी, ऋक्, यजुः और सामवेदस्वरूप तथा पुरुषेश्वर आदि कहा है (ब्रह्मा. पु. 1/2/25/64-77)। स्तुति के कुछ अंश देखें।

ब्रह्मणे चैव रुद्राय विष्णवे चैव ते नमः।
सांख्याय चैव योगाय भूतग्रामाय वै नमः।।
रजसे चैव सत्त्वाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये।
नित्याय चैवानित्याय नित्यानित्याय वै नमः।।
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः।
चिंत्याय चैवाचिंत्याय चिंत्याचिंत्याय वै नमः।।
जगतामार्त्तिनाशाय प्रियनारायणाय च।
.....।।

(ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वभाग/अनुषंगपाद/अध्याय 25/66, 71-73)

अर्थात्-ब्रह्मा, रुद्र एवं विष्णुरूपी शिव को नमस्कार है; सांख्य-योगस्वरूप शिव जो भूतों के आश्रय हैं, उनको नमस्कार है। सत्त्व एवं रजस्वरूप, जगत् के अव्यक्त कारण, नित्य, अनित्य एवं नित्यानित्यस्वरूप शिव को नमस्कार है। व्यक्त, अव्यक्त तथा व्यक्ताव्यक्त रूपवाले, चिन्त्य, अचिन्त्य एवं चिन्त्याचिन्त्य रूपवाले भगवान् शिव को नमस्कार है। जगत् के दुःखों का नाश करनेवाले नारायणप्रिय शिव को नमस्कार है।

शिव के विषपान के बाद आश्चर्यचकित हो सभी देव, असुर, एवं दैत्यगण हाथ जोड़कर कहते हैं अहो! कामदेव का नाश करनेवाले देवों के देव आपकी महानता अद्भुत है। तुम ही विष्णु एवं ब्रह्मा हो, तुम ही मृत्यु तथा वरदान हो। तुम ही सभी चराचर जगत् की सृष्टि, पालन तथा प्रलय करनेवाले हो। तुम ही सूर्य, चन्द्रमा तथा समस्त चराचर के स्वरूप हो।(ब्रह्मा. पु. 1/2/25/93-96)

अहो प्रभुत्वं तव देवदेव महाद्भुतं मन्मथदेहनाशन।
त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव मृत्युर्वरदस्त्वमेव।।
त्वमेव सूर्यो रजनीकरश्च व्यक्तिस्त्वमेवास्य चराचरस्य।
त्वमेव सर्वस्य चराचस्य धाता विधाता प्रलयस्त्वमेव। (ब्रह्मा.पु 1/2/25/94-96)

विष्णु द्वारा बली को बाँधने के पश्चात् सिद्ध, ब्रह्मर्षि, नाग, गंधर्व तथा यक्ष आदि क्षीरसागर में भगवान् विष्णु के पास जाकर उनकी प्रशंसा करने लगे। वे कहने लगे कि आपने ही असुरों का पराभव कर देवों तथा तीनों लोकों का कल्याण किया है।

उनकी बातों को सुनकर भगवान् विष्णु कहने लगे कि हमारी असुरों पर विजय का जो कारण है उसे सुनो-

जो सभी भूतों का स्रष्टा है, जो कालस्वरूप एवं संहारकर्त्ता है, जिसने अपनी माया से इस विश्व के साथ मुझे एवं ब्रह्मा को बनाया है, उसी की कृपा से हमें सिद्धि प्राप्त हुई है(जिसके बल पर मैंने असुरों को जीता है)।

यः स्रष्टा सर्वभूतानां कालः कालकरः प्रभुः।
येनाहं ब्रह्मणा सार्द्धम् सृष्टा लोकाश्च मायया।।
तस्यैव च प्रसादेन आदौ सिद्धत्वमागतः। (ब्रह्मा. पु. 1/2/26/9-10)

इतना कहने के पश्चात् भगवान् विष्णु ने लिंगोत्पत्ति की कथा सुनायी। उन्होंने कहना शुरू किया। सृष्टि के प्रारंभ में ब्रह्मा एवं हमारे बीच परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद छिड़ गया और हम एक दूसरे को जीतने की इच्छा करने लगे। इसी बीच में हम लोगों ने देखा कि उत्तर दिशा में अग्नि की एक ज्वाला प्रकट हो गयी है। वह वृत्ताकार ज्वाला उत्तरोत्तर बढ़ती हुई पृथ्वी एवं अन्तरिक्षतक व्याप्त हो गयी। इस ज्वाला को देखकर हम दोनों विस्मित होकर उसकी ओर दौड़े। इस ज्वाला के मध्य हमलोगों ने बारह अंगुल का एक लिंग देखा जो अव्यक्त होते हुए भी विपुल प्रभा से युक्त था। वह लिंग न सोने का न चाँदी का और न ही पत्थर का बना था और वह कभी प्रकट होता और कभी अदृश्य हो जाता। इस भंयकर अग्नि शिखर को देखकर इसके आदि और अन्त का पता लगाने के लिये ब्रह्मा ऊपर और मैं नीचे की ओर गया। परन्तु एक हजार वर्ष लगाने के बाद भी उसके ओर-छोर का पता नहीं लगा। उस समय विमोहित होने के कारण हम लोगों की चेतना लुप्त हो गयी थी। तदनन्तर हम दोनों ने विश्व की सृष्टि एवं संहारकर्त्ता, जो सर्वत्र हैं, उनपर ध्यान लगाया और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की।

उन दोनों ने भगवान् शिव के लिंगरूप की स्तुति करते हुए उन्हें अव्यक्त, लोकों के स्वामी, भूतपति, सर्वव्यापी, सिद्धयोगी, परमेष्ठी(सर्वश्रेष्ठ देव), ब्रह्म, अक्षर(अविनाशी), परमपद, ज्येष्ठ, प्रभु, यज्ञस्वरूप, वषट्कार एवं ओंकारस्वरूप, भगवान्, सभी लोकों के संहर्त्ता, काल, तीनों लोकों की सृष्टि तथा पालन करनेवाले, देवेश, लक्ष्मी, उमा, गायत्री तथा सीता आदि के जनक, वज्र एवं पिनाक धारण करनवाले, भस्म विभूषित अंगवाले, त्रिशूल एवं नागों का यज्ञोपवीत धारण करनेवाले आदि-आदि कहा है।(ब्रह्मा. पु. 1/2/26/32-54)

परमेष्ठी परं ब्रह्म त्वक्षरं परमं पदम्।
ज्येष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्रः स्कंदः शिवः प्रभुः।।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परंतपः।
.....।।
संहर्त्ता सर्वलोकानां कालो मृत्युमयोंऽतकः।
त्वं धारयसि लोकांस्त्रींस्त्वमेव सृजसि प्रभो।।
त्वत्तः प्रसूता देवेश ये चान्ये नियतव्रताः।
उमा सीता सिनीवाली कुहूर्गायत्र्य एव च।।
..... (ब्रह्मा. पु. 1/2/26/33-34, 39, 44)

अर्थात्-आप परमेष्ठी(सर्वोच्च देव), परमब्रह्म, अक्षर परमपद, सबके अग्रज(ज्येष्ठ), वामदेव,

रुद्र(दुष्टों को रुलानेवाले), स्कन्द और भगवान् शिव हैं। आप ही यज्ञ, वषट्कार, ओंकार हैं.....। आप ही सभी लोकों के संहारकर्त्ता एवं सबकी मृत्यु का कारण काल हैं। आप ही तीनों लोकों की रचना करनेवाले तथा उन्हें धारण करनेवाले हैं। हे देवेश! आप से ही उमा, सीता, सिनीवाली, कुहू तथा गायत्री उत्पन्न हुई हैं .....।

भगवान् विष्णु आगे कहते हैं-स्तुति को सुनने के बाद भगवान् शिव हमलोगों से बोले कि "तुम दोनों ही सनातन हो तथा पूर्वकाल में मेरे ही अंगों से उत्पन्न हो। लोकपितामह ब्रह्मा हमारे दाहिने हाथ तथा युद्ध में कहीं भी पराजित न होनेवाले विष्णु बायें हाथ हैं। तुम दोनों मुझसे अभिप्सित वर पा सकते हो।" तब हम दोनों ने उनके चरणों में प्रणामकर उनकी प्रीति एवं भक्ति का वर माँगा। तदनन्तर भगवान् शिव ने वर देने के पश्चात् हमें सृष्टिरचना का आदेश दिया।

उपरोक्त कथा के माध्यम से भगवान् विष्णु ऋषियों को परब्रह्म शिव की गरिमा बताते हैं तथा कहते हैं कि उन्हीं की कृपा और आदेश से हम सृष्टि की रचना एवं पालन करने में समर्थ हैं।

एक बार भगवान् शिव ऋषियों पर कृपा करने के लिये देवदारुवन में कापालिक वेश में गये थे। पर ऋषियों ने उन्हें पहचानना तो दूर रहा अपमानित कर उन्हें शाप दे डाला था। बाद में ऋषियों को ब्रह्माजी बतलाते हैं कि जिन्हें तुमने नहीं पहचाना वे महादेव ही सबसे बड़े देव हैं जिन्हें महेश्वर भी कहते हैं। वे ही देवों, ऋषियों और पितरों के स्वामी हैं, उनके परमपद को आसानी से प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे स्वयं ही अपने तेज से सभी प्रजाओं की सृष्टि करते हैं। वे ही वक्षपर श्रीवत्स धारण किये हुए चक्रधारी(भगवान् विष्णु) हैं। रुद्रदेव की तीनों मूर्तियों को बुद्धिमान् लोग जानते हैं। उनकी तमोमयीमूर्ति अग्नि(अर्थात् रुद्र), रजोमयी ब्रह्मा तथा सत्त्वमयीमूर्ति विष्णु कहलाती है। उस अव्यय देवेश एवं प्रभु की आराधना आप लोग इन्द्रियों को जीतकर तथा क्रोधरहित होकर करें।(ब्रह्मा. पु. 1/2/27/47-54)

एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येकः स्वतेजसा।
एष चक्री च वक्षोजश्रीवत्सकृतलक्षणः।।
रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्रो विज्ञेयाश्चापि पंडितैः।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुः प्रकाशकः।।
तस्माद्देवं देवदेवमीशानं प्रभुमव्ययम्।
आराधयत विप्रेन्द्रा जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।। (ब्रह्मा. पु. 1/2/27/50, 52, 54)

ब्रह्माजी की बतायी विधि से शिवलिंग स्थापितकर देवदारुवन के ऋषियों ने एक वर्षतक पूजा-स्तुति की। फलस्वरूप भगवान् शिव के दर्शन हुए। उनके दर्शनोपरान्त ऋषियों ने उनकी स्तुति की। स्तुति में उन्होंने भगवान् शिव को अनन्त बल-वीर्य सम्पन्न, भूतपति, अव्यय, त्र्यंबक, परमात्मा, कालस्वरूप, वेदमंत्र के प्रधान देव तथा भूत, वर्तमान एवं भविष्य के सभी स्थावर-जंगम एवं दृश्यमान जगत् को उत्पन्न करनेवाले कहा है।(ब्रह्मा. पु. 1/2/27/67-70)

उन्हें उनलोगों ने पुनः नीलकण्ठ, चिताभस्म के अंगराग से युक्त, अरूपवान्, विश्वरूप, सभी प्राणियों की आत्मा, नित्य, ब्रह्मा, सांख्य के पुरुष, वेदों के ओंकाररूप तथा परमेश्वर आदि कहा है।(ब्रह्मा. पु.1/2/27/75-91)

त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः।
आत्मा च सर्वभूतानां सांख्यैः पुरुष उच्यते।।
ओंकारः सर्ववेदानां .....। (ब्रह्मा. पु.1/2/27/80, 82)

अर्थात्-आप सभी देवों में ब्रह्मा तथा रुद्रों में नीललोहित हैं। आप सभी भूतों की आत्मा हैं, आप ही सांख्य के पुरुष हैं। वैदिक मन्त्रों में आप ओंकार हैं .....।

परशुराम को उनके प्रपितामह और्व ने सलाह दी कि सभी लोकों तथा हम सब लोगों के हित के लिये महादेवजी को तपस्या द्वारा सन्तुष्ट करो। महादेवजी की प्राप्ति से अवश्य ही श्रेय की प्राप्ति होगी। भक्तवत्सल शंकर के प्रसन्न होनेपर तुम्हें सभी प्रकार के इच्छित शस्त्र प्राप्त हो जायँगे। तुम्हारी शस्त्रप्राप्ति तथा हित की इच्छा पूरा करना अन्य देवताओं के लिये कठिन है, इसलिये तुम शंकर की ही आराधना करो(ब्रह्मा. पु. 2/3/21/74-80)।

हिमालयपर परशुरामजी यम, नियम, प्राणायाम, धारणा, ध्यान तथा जप के माध्यम से शिव को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगे। वे भगवान् शिव के निम्न रूप का चिन्तन करते थे। जो अमेय आत्मा तथा सभी रूपों में स्थित ईश्वर हैं, जो निष्कल, निरंजन, परंज्योति तथा अचिन्त्य हैं, जिनका योगी लोग ध्यान करते हैं, जो नित्य शुद्ध, सदाशान्त, अतिन्द्रिय, अनुपमेय, आनंदमात्र, अचल तथा पूर्णरूप से चराचर में व्याप्त हैं।

आराधयदमेयात्मा सर्वभावस्थमीश्वरम्।
ततः स निष्कलं रूपमैश्वरं यन्निरंजनम्।।
परं ज्योतिरचिंत्यं यद्योगिध्येयमनुत्तमम्।
नित्यं शुद्धं सदा शांतमतींद्रियमनौपमम्।
आनंदमात्रमचलं व्याप्ताशेषचराचरम्।। (ब्रह्माण्ड पु. 2/3/22/79-80)

तप के फलस्वरूप भगवान् शिव के प्रकट होनेपर परशुराम उनकी स्तुति करते हैं। उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को देवदेव, आदिमूर्ति, शाश्वत, नीलकण्ठ, नीललोहित, भूतनाथ, भूतों के आश्रय, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप, महादेव, अनेक रूप धारण करनेवाला(बहुरूप), जगत्पति तथा सर्वेश आदि कहा है(ब्रह्मा. पु. 2/3/24/25-30)।

तदनन्तर भगवान् शिव से 'परशु' तथा आशीर्वाद प्राप्त करके परशुराम ने पुनः शिवजी की स्तुति की। अपनी इस स्तुति में भगवान् शिव को उन्होंने देवदेवेश, परमेश्वर, जगन्नाथ, त्रिपुरारि, भक्तवत्सल, सर्वभूतेश, वृषभध्वज, करुणाकर, सभी लोकों के पालनहार, कैलासवासी, श्मशानवासी,

कालकूट का नाश करनेवाले, देववन्द्य, स्वयंभू, जगत् के कर्मों के साक्षी, परमात्मा, देह में भस्म लगानेवाले, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि को नेत्ररूप में धारण करनेवाले, जटाधारी, अंधकासुर का विनाश करनेवाले, त्रिपुर तथा दक्ष-यज्ञ का विनाश करनेवाले, योगियों के ध्येय, अचिन्त्य तेज से सम्पन्न, सभी आगमों के सारसिद्धान्तरूप, अमृत, ब्रह्म, विश्वरूप, आदि, मध्य एवं अंतहीन, नित्य, अव्यक्तमूर्ति, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप, स्थूल एवं सूक्ष्म आत्मा, जगत् के कर्त्ता तथा धारणकर्त्ता, विश्वात्मा, सत्त्वविज्ञानरूप, तमोगुण के आश्रय से जगत् का संहार करनेवाले, अविकारी, नित्य, सदसदरूप, अज, सूक्ष्म, अनुपमेय, निर्मल योगियों तथा ब्रह्मादि द्वारा भी अज्ञेय, अज्ञान विघातक तथा भक्तवत्सल आदि-आदि कहा है(ब्रह्मा. पु. 2/3/25/5-31)। स्तुति के कुछ अंश देखें-

नमः शर्वाय शांताय ब्रह्मणे विश्वरूपिणे।
आदिमध्यांतहीनाय नित्यायाव्यक्तमूर्त्तये।।
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः।
नमोवेदांतवेद्याय विश्वविज्ञानरूपिणे।।
अविकारमजं नित्यं सूक्ष्मरूपमनौपमम्।
तव यत्तन्न जानंति योगिनोऽपि सदाऽमलाः।।
त्वामविज्ञाय दुर्ज्ञेयं सम्यग्ब्रह्मादयोऽपि हि। (ब्रह्मा. पु. 2/3/25/17-18, 25-26)

अर्थात्- शान्तस्वरूप, विश्वरूप तथा ब्रह्म शर्व को नमस्कार है। आदि, मध्य तथा अन्त से रहित, नित्य तथा अव्यक्तमूर्ति भगवान् शिव को नमस्कार है। जो व्यक्त, अव्यक्त, स्थूल तथा सूक्ष्म-स्वरूप तत्त्व है उसे नमस्कार है। वेदान्त द्वारा ज्ञेय तथा विश्व-विज्ञान-स्वरूप भगवान् शिव को नमस्कार है। आप अविकारी, अजन्मा, नित्य, सूक्ष्म तथा अनुपमेय हैं। आपको पूर्णरूप से न तो सदा निर्मल चित्त रखनेवाले योगीजन और न ही ब्रह्मा आदि ही जानते हैं।

ब्रह्मा के परामर्शानुसार शिव से कार्तवीर्य के वध की आज्ञा प्राप्त करने हेतु परशुराम शिवलोक जाते हैं। वहाँ जा कर उन्होंने त्रिनेत्र शान्त चन्द्रशेखर जो त्रिशूल एवं व्याघ्रचर्म से सुशोभित थे, विभूति से भूषित तथा नागों का यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे, जो आत्माराम, पूर्णकाम तथा करोड़ों सूर्य के समान आभा से युक्त थे तथा जिनके पाँच मुख तथा दस भुजायें थी, को देखा जो भक्तों के लिये दया की मूर्ति थे।(ब्रह्मा. पु. 2/3/32/18-20)

वहाँ जाकर वे भगवान् की स्तुति करते हैं। अपनी स्तुति में वे भगवान् शिव को ईशान, विभु, व्यापक, अव्यय, सभी लोकों में व्याप्त, सृष्टि, स्थिति एवं विनाशकर्त्ता, ब्रह्मा आदि का रूप धारण करनेवाले, अग्रज, दया के सागर, मन-वाणी से अगोचर, वेदों से परे, ज्ञान एवं बुद्धि द्वारा भी अज्ञेय, निराकार, इन्द्रादि देवगण, ऋषिगण, मनु एवं असुरगण द्वारा यथार्थरूप में अज्ञेय, परात्पर, जगत्स्वरूप तथा अपने अंश के अंशमात्र से सभी लोकों के चराचर की सृष्टि एवं प्रलय करनेवाले कहते हैं(ब्रह्मा.

पु. 2/3/32/25-32) स्तुति के कुछ अंश देखें-

नमस्ये शिवमीशानं विभुं व्यापकमव्ययम्।

.....

यो विभुः सर्वलोकानाम् सृष्टिस्थितिविनाशकृत्।
ब्रह्मादिरूपधृग्ज्येष्ठस्तं त्वां वेद कृपार्णवम्।।
वेदा न शक्ता यं स्तोतुमवाङ्मनसगोचरम्।
ज्ञानबुद्ध्योरसाध्यं च निराकारं नमाम्यहम्।।
शक्रादयः सुरगणा ऋषयो मनवोऽसुराः।
न यं विदुर्यथातत्त्वं तं नमामि परात्परम्।।
यस्यांशांशेन सृज्यंते लोकाः सर्वे चराचराः।
लीयंते च पुनर्यस्मिंस्तं नमामि जगन्मयम्।।
यः कालरूपो जगदादिकर्त्ता पाता पृथग्रूपधरो जगन्मयः।
हर्त्ता पुना रुद्रवपुस्तथांते तं कालरूपं शरणं पपद्ये।।

(ब्रह्मा. पु. 2/3/32/25-29, 32)

अर्थात्-विभु, व्यापक, अव्यय तथा ईशान(सबके अधिपति) शिव को नमस्कार है। आप सभी लोकों के स्वामी, सृष्टि, स्थिति तथा विनाश के हेतु, ब्रह्मा आदि का रूप धारण करनेवाले सबके अग्रज तथा दया के समुद्र हैं-ऐसा आपको हम मानते हैं। जिसकी स्तुति करने में वेद भी असमर्थ हैं, जो मन-वाणी से अगोचर है, जिसे ज्ञान एवं बुद्धि द्वारा नहीं जाना जा सकता तथा जो निराकार है, उसे हम नमस्कार करते हैं। जिनका यथार्थ ज्ञान इन्द्र तथा दूसरे देवगण, ऋषि, मनु एवं असुरगण किसी को भी नहीं है उस परात्पर को मेरा नमस्कार है। जिसके सूक्ष्म अंश से चराचर से युक्त सभी लोकों का निर्माण होता है तथा वे सब जिसमें पुनः लीन हो जाते हैं, उस जगत्स्वरूप ईश्वर को नमस्कार है। जो कालरूप तथा सृष्टि का कर्त्ता है, जो पृथक् रूप धारणकर जगत् का पालन करता है, जो विश्वरूप है तथा अन्त में जो रुद्ररूप धारण कर सृष्टि का अन्त करता है, उस कालरूप शिव की शरण ग्रहण करता हूँ।

संजीवनी विद्या एवं अन्य वरों की प्राप्ति के बाद शुक्राचार्य ने भगवान् शिव की स्तुति की है। उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को शितिकण्ठ, देवताओं के अग्रज, जगत्पति, जटाधारी, वर देनेवाले, देवदेव, सहस्राक्ष, सहस्रबाहु, सहस्र पैरवाले, सहस्र सिरवाले, बहुरूप, विश्वरूप, श्वेतवर्णवाले, महादेव, पिनाकधारी, त्रिनेत्र, ईश्वर, मृत्यु, त्र्यम्बक, सांख्य एवं योग द्वारा ध्येय, बुद्ध, शुद्ध, मुक्त, केवल(अद्वैत), लोकों के ईश्वर, अनामय, पशुपति, भूतपति, ऋक्, यजुः तथा सामवेदस्वरूप, वषट्कार, मंत्रात्मा, स्रष्टा, धर्त्ता तथा हर्त्ता, भूत, वर्तमान एवं भविष्य के अधिपति, कर्मात्मा,

यज्ञात्मा, अव्यक्त तथा नित्य आदि-आदि कहा है।(ब्रह्मा. पु. 2/3/72/163-195)

उपरोक्त उद्धरणों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् शिव ही परमतत्त्व या ब्रह्म हैं जो सगुणरूप धारण करके जगत् का व्यापार चलाते हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र बनकर सृष्टि, पालन तथा संहार का कार्य करते हैं। वे ही सभी वस्तुओं, देवों, दानवों, मानवों आदि के प्रभु, कर्मों के फलदाता तथा मुक्तिकर्त्ता हैं। निर्गुणरूप में उन्हें अव्यक्त, मन-वाणी से अगम्य, निराकार, ब्रह्म, परमतत्त्व, अपरिमेय, स्वयंभू, सनातन, अव्यय, शुद्ध, अद्वैत(केवल) तथा ओंकारस्वरूप कहा गया है। ऊपर की स्तुतियों में भगवान् शिव के विशेषणों की पुनरावृत्ति निरर्थक नहीं है। स्तुतियों में पाये जानेवाले प्रमुख विशेषण किसी स्तुतिकर्त्ता की स्थिति विशेष में उत्पन्न भावात्मक उद्गार मात्र नहीं हैं अन्यथा उनकी पुनरावृत्ति प्रत्येक स्तुति में(चाहे वह किसी एक व्यक्ति की हो चाहे अन्यों की हो) नहीं हो सकती। वास्तव में वे विशेषण लोकमान्य(या प्रचलित) एवं स्थायी विशेषण हैं। यही कारण है कि एक ही विशेषण को हमने बार-बार अलग-अलग स्तुतियों में दोहराया है। अतः यहाँ पर अथवा अन्य अध्यायों में की जानेवाली पुनरावृत्ति को अन्य दृष्टि से नहीं लेना चाहिये। यद्यपि ऐसा करने से लेख लम्बा तथा उबाऊ हो सकता है।

शिवोपासना

भगवान् शिव को इस पुराण में अनेक स्थलों पर वरदाता(1/2/25/68 एवं 94; 2/3/72/164 आदि), जगत् के दुःखों का विनाश करनेवाले(1/2/25/73 आदि), परम पद(1/2/26/33 आदि), जिनका दर्शन सभी प्रकार के अज्ञान एवं अधर्म को नष्ट करनेवाला(1/2/27/56 आदि), भक्तवत्सल(2/3/23/31; 2/3/25/6 इत्यादि), योगियों के ध्येय(2/3/25/14; 2/3/72/176 इत्यादि), देवों द्वारा वन्द्य(2/3/25/10 आदि), दया के सागर(2/3/32/26), पाप का दमन करनेवाले तथा शरण में आये हुए को अभय प्रदान करनेवाले(2/3/23/31 इत्यादि) कहा गया है।

परशुराम की परीक्षा लेने आये व्याधरूपी भगवान् शंकर के किसी प्रश्न के उत्तर में परशुराम कहते हैं कि-

तस्मात्सर्वेश्वरं सर्वशरण्यमभयप्रदम्।
त्रिनेत्रं पापदमनं शंकरं भक्तवत्सलम्।। (ब्रह्मा. पु. 2/3/23/31)

(तपस्या द्वारा मैं)सर्वेश्वर शिव जो शरण में आये हुए सभी को अभय प्रदान करनेवाले हैं, त्रिनेत्र, पापदमन करनेवाले तथा भक्तवत्सल हैं,(उन्हें प्रसन्न करूँगा)। परशुरामजी के उपरोक्त कथन से भगवान् शंकर अभय प्रदान करनेवाले, पाप का नाश करनेवाले तथा भक्तवत्सल सिद्ध होते हैं।

एक स्थल पर भगवान् शिव के प्रति कहा गया है कि "चाहे कोई पण्डित हो या मूर्ख वह

संसारचक्र में तबतक भ्रमण करता रहता है जबतक कि वह आपके चरणों में नहीं जाता, क्योंकि आप ही अज्ञान को दूर करनेवाले हैं। वही व्यक्ति चतुर, भाग्यशाली, मुनि तथा ज्ञानी है जिसकी बुद्धि आप के चरणकमलों में स्थिर हो गयी है।"

यावन्नोपैति चरणौ तवाज्ञानविघातिनः।
तावद्भ्रमति संसारे पंडितोऽचेतनोऽपि वा।।
स एव दक्षः स कृती स मुनिः स च पंडितः।
भवतश्चरणांभोजे येन बुद्धिः स्थिरीकृता।। (ब्रह्मा. पु. 2/3/25/27-28)

अगर हम ऊपर के उद्धरणों को गहराई से देखें तो यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति को अपने परम कल्याण के लिये भगवान् शिव की शरण लेनी चाहिये।

भगवान् शिव की भक्ति से ब्रह्मा एवं विष्णु को सृष्टि की रचना तथा पालन का सामर्थ्य (1/2/ अध्याय 25 एवं 26), परशुराम को परशु तथा अन्य शैवास्त्रों की प्राप्ति (2/3/अध्याय 23, 24 एवं 32) तथा शुक्राचार्य को मृतसंजीवनी विद्या तथा अन्य वरदानों की प्राप्ति (2/3/अध्याय 72) हुई थी। अनेकों सुर-असुर, मानव तथा अन्य योनिगत लोगों ने शिव की आराधना से मनोवांछित फल पाये हैं। परम दयालु होने के कारण ही भगवान् शिव ने देवों की प्रार्थना पर विषपान किया था। अतः ऐसे दयालु एवं शीघ्र प्रसन्न होनेवाले आशुतोष शिव की शरण में कौन नहीं जाना चाहेगा?

(1) लिंगार्चन

ब्रह्माण्ड पुराण में लिंगपूजा की उत्पत्ति संबंधी दो प्रकार की कथाएँ मिलती हैं। दोनों ही कथाएँ क्रमशः -1/2/26 तथा -1/2/27 में पायी जाती हैं।

पहली कथा में बताया गया है कि एक बार ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद छिड़ गया तथा दोनों ही एक दूसरे को जीतने का प्रयास करने लगे। इसी बीच में उन दोनों ने एक गोलाकार अग्नि की शिखा को प्रकट होते देखा। यह अग्निशिखा अत्यन्त प्रचण्ड तेज से युक्त थी। वे दोनों कौतुहल एवं भय से युक्त हो उस शिखा के पास जाकर उसे देखने लगे। उस समय उन्होंने अग्निशिखा के मध्य एक चमकते हुए लिंग को देखा जो न तो सोने का न चाँदी का और न ही किसी पत्थर का बना हुआ था। उस लिंग का प्रमाण बारह अंगुल था। उससे हजारों चिनगारियाँ निकल रही थीं। वह लिंग कभी प्रकट हो जाता और कभी अदृश्य हो जाता था। इस प्रकार इस कथा में भगवान् शिव का लिंगाकार रूप में प्रकट होना बताया गया है। इस ज्योतिर्मय लिंग के ओर-छोर का (ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा) पता न चलने पर उन लोगों ने उसकी स्तुति की। तदनन्तर भगवान् शिव प्रकट हो उन लोगों को वरदान दिया। तभी से लिंगपूजा की शुरुआत मानी जाती है (ब्रह्मा. पु. 1/2/अध्याय 26)।

दूसरी कथा में यह बताया गया है कि एक बार शिवजी देवदारुवन में तपस्यारत ऋषियों पर अनुग्रह करने हेतु भस्म लपेटकर दिगम्बर एवं विकृत वेश-भूषा बनाकर पधारे। उनके मुख भयानक,

नेत्र लाल तथा केश विकृत थे। वे कभी रोते, कभी हँसते, कभी नाचते तथा कभी विस्मित मुद्रा में होते। उन्हें देखकर उन ऋषियों की पत्नियाँ मोहित हो गयीं। वे आश्रमों में जाकर बार-बार भिक्षा माँगते थे। अपनी पत्नियों को मोहित देखकर ऋषियों ने क्रुद्ध होकर भगवान् शिव को श्राप दिया तथा उनके लिंग पर प्रहार कर उसे गिरा दिया।

इसके उपरान्त भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये तथा सभी ऋषिगण निस्तेज हो गये और समस्त सृष्टि में उत्पत्ति की सभी क्रियाएँ अवरुद्ध हो गयीं।

इसके पश्चात् ऋषिगणों ने ब्रह्माजी के पास जाकर शिव के उपरोक्त वृत्तान्त का वर्णन किया। तब ब्रह्माजी ने ध्यान द्वारा सम्पूर्ण रहस्य को जानकर ऋषियों को भगवान् शिव की महिमा बताते हुए उन्हें शिव के लिंग की पूजा करने का निर्देश दिया। तदनन्तर ऋषियों ने लिंग का निर्माण कर उसकी पूजा की तथा भगवान् शिव को प्रसन्न किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस पुराण में भी लिंगार्चन का विशेष महत्त्व बताया गया है।(ब्रह्मा. पु. 1/2/अध्याय-27)

(2) भस्ममाहात्म्य एवं पाशुपत अथवा कापालिक व्रत

शिव के उपासकों में भस्म का बड़ा ही महत्त्व माना गया है। इस पुराण में भस्म-माहात्म्य भगवान् शिव के मुख से ही कहलवाया गया है।

देवदारुवन के ऋषियों की लिंगपूजा से प्रसन्न होकर जब भगवान् शिव प्रकट हुए तो उस समय उन्होंने उन्हें भस्म के माहात्म्य को बतलाया। साथ में उन्होंने पाशुपत अथवा कापालिक व्रत को भी समझाया। वे भस्म की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि जो लोग भस्म को धारण करते हैं, उनके सभी पाप भस्म हो जाते हैं। जो भस्मधारी भक्त प्रियवादी तथा लोक के हित में रत रहते हैं, जो मेरे परायण एवं भिक्षा पर निर्भर रहकर विचरण करते रहते हैं, उनकी निन्दा करनेवाला महादेव की निन्दा करता है। जो लोग उनकी पूजा करते हैं वे शंकर की ही पूजा करते हैं। इस प्रकार के व्यवहार करनेवाले को मुझसे आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त होती है(ब्रह्मा. पु. 1/2/27/92-94)।

ये ही मे भस्मनिरता भस्मना दग्धकिल्बिषाः।

.....

यस्तान्निन्दति मूढात्मा महादेवं स निंदति।

यस्त्वेतान्पूजयेन्नित्यं स पूजयति शङ्करम्।

एवं चरथ भद्रं वो मत्तः सिद्धिमवाप्स्यथ।। (ब्रह्मा. पु. 1/2/27/92, 94)

अर्थात्-जो लोग भस्मधारण कर अपने पापों से मुक्त हो गये हैं..... ऐसे लोगों की जो मूढ़ात्मा निन्दा करता है, वह महादेव की ही निन्दा करता है, और जो उनकी सदा पूजा करता है वह शंकर की ही पूजा करता है। इस प्रकार का व्यवहार करने से तुम्हें मुझसे(आध्यात्मिक) सिद्धि प्राप्त होगी।

पुनः ऋषियों ने उनसे पूछा कि प्रभो! आपकी नग्नता, भस्म-स्नान तथा सेव्यासेव्य में भेद न करने का क्या कारण है? अर्थात् आपके कापालिन् रूप का क्या रहस्य है। उत्तर में शिवजी कहते हैं कि वे अपने शरीर पर भस्म इसलिये मलते हैं कि वह एक ऐसा पदार्थ है जो अग्नि द्वारा पूर्णतया भस्म किया जा चुका है और अग्नि के सर्वपरिशोधक होने के कारण यह भी परिशुद्ध है। अतः भस्म के परम पवित्र होने के कारण जो उसे अपने शरीर पर लगाता है, उसके समस्त पाप कट जाते हैं। जो व्यक्ति भस्म में स्नान करता है, वह विशुद्धात्मा, जितक्रोध और जितेन्द्रिय होकर मेरे धाम को प्राप्त होता है। नग्न रहने के सम्बन्ध में भगवान् शिव ने कहा कि सब प्राणी नंगे ही पैदा होते हैं, अतः नग्नता में स्वतः कोई दोष नहीं है। इससे तो मनुष्य के आत्मसंयम की जाँच होती है और इसीसे व्यक्ति विशेष का आत्म-संयम प्रतिबिम्बित भी होता है। जिनमें आत्मसंयम नहीं है, वे ही वास्तव में नग्न हैं, चाहे वे कितने भी वस्त्र धारण क्यों न करें। जो आत्मसयंमी हैं, उनको बाहरी आवरणों से क्या वास्ता? इसी प्रकार श्मशान भूमि में विचरने से, व्यक्ति अपनी प्राकृतिक भावनाओं पर कितना नियंत्रण रख सकता है, इसकी जाँच होती है। जो इस प्रकार नियंत्रण रख सकते हैं और 'दक्षिण-पथ' के अनुसार श्मशान भूमि में निवास करते हैं, वे अपनी इच्छाशक्ति की उत्कृष्टता का प्रमाण देते हैं और इसी कारण उनको अमरत्व और ईशत्व प्राप्ति का अधिकारी माना गया है(ब्रह्मा. पु. 1/2/27/105-128)।

भगवान् शिव कहते हैं कि अग्नि मेरा रूप है और सम्पूर्ण वस्तुओं(जिनका अभी अस्तित्व है और जिनका अभी अस्तित्व नहीं है) का आश्रय अग्नि ही है। और अग्नि ही सभी स्थावर-जंगम को जला देती है। चूँकि अग्नि पवित्र है इसलिये भस्म भी पवित्र है क्योंकि भस्म को अग्नि का वीर्य(सार) कहा गया है। इसीलिये यह सभी पापों को भस्म करनेवाला होता है।

भस्मना मम वीर्येण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः। (ब्रह्मा. पु. 1/2/27/109)

भावार्थ है कि भस्म जो मेरा(अग्निरूप शिव का) वीर्य है, सभी पापों से छुड़ा देता है।

भस्म को भस्म इसलिये कहते हैं कि यह वस्तुओं के शुभ को भासित(प्रकाशित) करता है, और उन्हें सुवासित करता है। यह सभी पापों को तत्क्षण ही भस्म कर देता है, इस कारण इसके गुण का गान किया जाता है।

भासयत्येव यद्भस्म शुभं वासयते च यत्।
तत्क्षणात्सर्वपापानां भस्मेति परिकीर्त्यते।।
भस्मस्नानविशुद्धात्मा जितक्रोधो जितेंद्रियः।
मत्समीपमुपागम्य न भूयो विनिवर्तते।। (ब्रह्मा. पु. 1/2/27/110, 115)

अर्थात्-भस्मस्नान से शुद्ध आत्मा इद्रियों एवं क्रोध पर विजय प्राप्तकर मेरे समीप(अर्थात् शिवलोक) आ जाता है तथा उसका पुनः जन्म नहीं होता।

भस्मधारण से व्यक्ति की अशुभ तत्त्वों से सुरक्षा भी प्राप्त होती है अर्थात् सभी प्रकार के

अनिष्टों से बचाव होता है।

पाशुपत अथवा कपालव्रत के सन्दर्भ में भगवान् शिव कहते हैं कि –

नग्ना एव हि जायंते देवता मुनयस्तथा।
ये चान्ये मानवा लोके सर्वे जायंत्यवाससः।।
इंद्रियैरजितैर्नग्ना दुकूलेनापि संवृताः।
तैरेव संवृतो गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्।।
क्षमा धृतिरहिंसा च वैराग्यं चैव सर्वशः।
तुल्यौ मानापमानौ च तत्प्रावरणमुत्तमम्।। (ब्रह्मा. पु.1/2/27/118-120)

अर्थात् – देवता, मुनि तथा मनुष्य सभी लोग बिना वस्त्र के नग्न ही पैदा होते हैं। सिल्क के वस्त्र में लिपटा हुआ मनुष्य भी नग्न ही है, अगर उसने अपनी इन्द्रियों को नहीं जीता। इन्द्रियों को जीतनेवाला नग्न नहीं है क्योंकि नग्नता का कारण वस्त्र नहीं है। क्षमा, धृति, अहिंसा, चारों तरफ से विरक्त तथा मान और अपमान में सम रहना ही उत्तम आवरण हैं।

भस्ममाहात्म्य के बारे में आगे कहा गया है कि –

यद्यकार्यसहस्राणि कृत्वा स्नायति भस्मना।।
तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम्।
तस्माद्यत्नपरो भूत्वा त्रिकालमपि यः सदा।।
भस्मना कुरुते स्नानं गाणपत्यं स गच्छति। (ब्रह्मा. पु.1/2/27/121-123)

भावार्थ यह है कि हजारों कुकर्म करनेवाला व्यक्ति भी अगर भस्म से स्नान करता है तो उसके पाप उसी तरह भस्म हो जाते हैं जिस प्रकार अग्नि वन को जला देती है। इसलिये यत्नपूर्वक जो सदैव तीनों संध्या में भस्म से स्नान करता है वह गणों का स्वामी बन जाता है।

इस पुराण में पाशुपतव्रत या कापालिकव्रत के बारे में प्रत्यक्षतः कुछ नहीं कहा गया है। परोक्षरूप में इतना ही कहा गया है कि इस व्रत को धारण करनेवाला भस्म स्नान करता है, दिगम्बर रहता है, इन्द्रियों तथा मन को जीतने का अभ्यास करता है तथा भगवान् शिव के ध्यान में लीन रहकर लोकहित में भिक्षाटन करते हुए विचरण करते रहता है। पुनः जो लोग दक्षिण-पथ से (न कि उत्तरपथ से) कापालिक व्रत धारण करते हैं उन्हें श्मशान में निवास करना चाहिये तथा ऊपर दिये गये इन्द्रिय संयम आदि नियमों का पालन करते रहना चाहिये।

(3) शिवोपासना संबंधी कुछ अन्य बातें

इस पुराण में वाराणसी तीर्थ के बारे में बताया गया है कि इस तीर्थ को भगवान् शिव कभी नहीं त्यागते इसलिये इसे अविमुक्तक्षेत्र भी कहते हैं (ब्रह्मा. पु. 2/3/67/60-61)। इस पुरी को सिद्धक्षेत्र कहा गया है (ब्रह्मा. पु. 2/3/67/39)। यह पुरी तीन युगों में प्रत्यक्ष रहती है पर कलियुग

में इसके अन्तर्धान होने के उपरान्त यह नगर फिर से व्यक्तियों के द्वारा बसाया जाता है(ब्रह्मा. पु. 2/3/67/63-64)।

पुराणगत परिशिष्ट ललितोपाख्यान के अन्तर्गत किसी स्त्री को दिये गये उपदेश में शतरुद्रिय की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। वहाँ कहा गया है कि इसके पाठ से सभी प्रकार के पापों से मुक्ति मिल जाती है। फिर वहीं पर उस स्त्री को शतरुद्रिय की दीक्षा प्राप्त करते हुए भी दिखाया गया है(ब्रह्मा. पु. 3/4/7/48-52)।

ध्यात्वा हृदि महेशानं शतरुद्रमनुं जपेत्।।
ब्रह्महा मुच्यते पापैरष्टोत्तर सहस्रतः।
पापैरन्यैश्च सकलैर्मुच्यते नात्र संशयः।। (ब्रह्मा. पु. 3/4/7/49-50)

अर्थात्-हृदय में भगवान् शिव का ध्यानकर 1008 बार शतरुद्रिय का पाठ करने से ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा हो जाता है, तथा अन्य सभी प्रकार के पापों से भी मुक्ति मिल जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है।

यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि क्या स्त्री भी शतरुद्रिय के मन्त्रों(जो कि वैदिक मन्त्र हैं) के जप की अधिकारिणी है? परम्परा से उसे अधिकारिणी नहीं माना जाता। परन्तु इस पुराण में स्त्री को शतरुद्रिय मन्त्रों के जप करने का उपदेश किया गया है। ऐसी स्थिति में हमारे पास दो विकल्प हैं-या तो हम स्त्री को भी वैदिक मन्त्रों(कम से कम शतरुद्रिय) के पाठ का अधिकारी माने अथवा जिस शतरुद्रिय का उपदेश इस पुराण में स्त्री को किया गया है वह वैदिक न होकर पौराणिक शतरुद्रिय(जिसका वर्णन स्कन्द पु. के माहेश्वरखण्ड के कुमारिकाखण्ड में है तथा उसे इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है) अथवा कोई अन्य शतरुद्रिय हो सकता है। परम्परा को देखते हुए दूसरे विकल्प को ही स्वीकार करना चाहिये।

भगवान् शिव एवं विष्णु

भगवान् शिव को नारायणप्रिय(ब्रह्मा. पु. 1/2/25/73) कहा गया है। भगवान् शिव नारायणप्रिय ही नहीं अपितु उनके आत्मस्वरूप हैं। अर्थात् भगवान् शिव स्वयं ही जगत्-व्यापार चलाने के लिए ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र का रूप धारण करते हैं। सगुण-साकाररूप में ये तीनों मूर्तियाँ तथा उनके कार्य-व्यवहार भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु तत्त्वतः ये तीनों एक ही हैं।

इस पुराण में अनेक स्थानों पर इस तथ्य को बताया गया है कि परमतत्त्व शिव ही गुणों का आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु अथवा रुद्र का रूप धारण करते हैं। उदाहरण के लिये निम्न श्लोकों पर ध्यान दीजिये।

रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्रो विज्ञेयाश्चापि पंडितैः।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुः प्रकाशकः।। (ब्रह्मा. पु. 1/2/27/52)

ब्रह्मणे चैव रुद्राय विष्णवे चैव ते नमः। (ब्रह्मा. पु. 1/2/25/66)
त्वमेवविष्णुश्चतुराननस्त्वं .....।। (ब्रह्मा. पु. 1/2/25/94)
एष चक्री च वक्षोजश्रीवत्सकृतलक्षणः।। (ब्रह्मा. पु. 1/2/27/50)
ब्रह्मादिरूपधृक् .....।। (ब्रह्मा. पु. 2/3/32/26)

उपरोक्त श्लोकों के अर्थ इसी अध्याय में पहले ही बताये जा चुके हैं, इसलिये उनकी पुनरावृत्ति नहीं की जा रही है। ये श्लोक स्पष्टरूप से प्रमाणित करते हैं कि प्रमुख देवों विष्णु तथा ब्रह्मा का शिव से एक स्तर पर तादात्म्य है, अर्थात् एक स्तरविशेष पर वे एक ही हैं।

भगवान् शिव की अर्द्धांगिनी उमादेवी हैं अर्थात् भगवान् शिव के आधे अंग में उमादेवी स्थित हैं। इसी बात को यूँ भी कहा जाता है कि पुरुष और प्रकृति, बह्म और माया अभिन्न रूप से स्थित हैं। ब्रह्म 'शिव' अपनी माया 'शक्ति' के आश्रय से ही सृष्टिप्रक्रिया में प्रवृत्त हो ब्रह्मा तथा विष्णु आदि का रूप धारण करते हैं। यही शिव-शक्ति से युक्त ब्रह्म(अर्थात् सगुण शिव) ही न केवल ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रादि का अपितु उमा, सीता और लक्ष्मी आदि का भी रूप धारण करता है(ब्रह्मा. पु. 1/2/26/44-45)।

उमा की तरह राधा भी कृष्ण की अर्द्धांगिनी हैं। राधा को भी कृष्ण से अभिन्न माना गया है। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित संदर्भ देखिये। परशुराम द्वारा गणेश के एक दाँत को नष्ट कर देने के बाद शिवजी ने श्रीकृष्ण का स्मरण किया। तदनन्तर राधासहित कृष्ण वहाँ आ गये। इसी प्रसंग में शिवरूपा सनातनी राधा पार्वती से कहती हैं कि प्रकृति और पुरुष दोनों अन्योन्याश्रित विग्रह हैं। फिर भी(जगत्) प्रपंच में वे दोनों भिन्न-भिन्न प्रकाशित होते हैं। हे देवि! तुम्हारे और हमारे में कोई भेद नहीं है। तुम विष्णु और मैं शिवरूप हूँ। शिव के हृदय में तुम विष्णु होकर स्थित हो और विष्णु के हृदय में मेरा ही रूप शिव होकर स्थित है।

प्रकृतिः पुरुषश्चोभावन्योन्याश्रयविग्रहौ।
द्विधा भिन्नौ प्रकाशेते प्रपंचेऽस्मिन् यथा तथा।।
त्वं चाहमावयोर्देवि भेदो नैवास्ति कश्चन।
विष्णुस्त्वमहमेवास्मि शिवो द्विगुणतां गतः।।
शिवस्य हृदये विष्णुर्भवत्या रूपमास्थितः।
मम रूपं समास्थाय विष्णोश्च हृदये शिवः।। (ब्रह्मा. पु. 2/3/42/47-49)

उपरोक्त उद्धरण में उमा और राधा का तथा शिव एवं विष्णु का तादात्म्य दिखलाया गया है। अर्थात् वे सब व्यवहार में, जगत् प्रपंच में, भिन्न होते हुए भी तत्वतः एक ही हैं।

उपसंहार

ब्रह्माण्ड पुराण को आमतौर से शैव पुराण माना गया है, परन्तु इसमें विष्णु एवं देवी आदि के

माहात्म्य की विस्तृत चर्चा है। अतः इसे शैव पुराण कहना उचित नहीं प्रतीत होता।

इस पुराण में भी भगवान् शिव को परमतत्त्व या परमब्रह्म स्वीकार किया गया है। वही निर्गुण शिवतत्त्व सगुणरूप धारण कर ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रादि के रूप में व्यक्त होता है। निर्गुण शिव को परमब्रह्म, ॐकारस्वरूप, अचिन्त्य, मन, वाणी तथा बुद्धि से परे, नित्य, शुद्ध, केवल(अद्वैत), स्वयंभू निर्विकार एवं अव्यक्त कहा गया है। सगुण शिव को सैकड़ों विशेषणों से युक्त बताया गया है। जैसे उन्हें पंचानन, नीलकण्ठ, दस भुजाओंवाले, श्वेत वर्णवाले, जटाधारी, मृगचर्मधारी, पिनाक, त्रिशूल एवं वज्र आदि को धारण करनेवाले, चन्द्रशेखर, भस्मधारी, मुण्डमालाधारी, त्रिलोकीनाथ, पशुपति, भूतपति, ब्रह्मा, विष्णु, तथा रुद्र रूपवाले, सभी भूतों की आत्मा, देवों के देव, त्रिनेत्रधारी, नारायणप्रिय, जगत् के दुःखों को दूर करनेवाले, बहुरूपधारी, वेदों के प्रमुख देव, जगत्स्वरूप, अग्नि, चन्द्रमा तथा सूर्य को नेत्ररूप में धारण करनेवाले, भक्तवत्सल, करुणासागर, मुक्तिदाता, देवता, असुर, मानव तथा योगियों आदि सभी द्वारा पूज्य, कालस्वरूप, सृष्टि के कर्त्ता, धर्त्ता एवं संहारकर्त्ता, कामारि, त्रिपुरहन्ता, अर्द्धनारीश्वर, माया द्वारा संसार को चलानेवाले, यज्ञस्वरूप, नागों का यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, सांख्य के पुरुष, अजन्मा, विभु एवं व्यापक तथा प्राणियों की आत्मा आदि-आदि कहा गया है। उनके आदि एवं अन्त को देवता, ऋषि तथा मनुष्य कोई भी नहीं जानता।

भगवान् शिव को वरदाता, परमपद, योगियों के ध्येय, भक्तवत्सल, दुःखों का नाश करनेवाले, देववन्द्य, दया के सागर, पाप का दमन करनेवाले, शरण में आये हुए को अभय प्रदान करनेवाले तथा जिनका दर्शन अज्ञान एवं अधर्म को नष्ट करनेवाला है-ऐसा कहा गया है। उनकी भक्ति के बिना कोई भी भवसागर या जन्म-मरण के चक्र से छूट नहीं सकता इसीलिये शिवभक्ति सबके लिये अपेक्षित है। शिवोपासना से ब्रह्मा एवं विष्णु को क्रमशः सृष्टिरचना तथा पालन का, परशुराम को शैवास्त्रों तथा परशु की तथा शुक्राचार्य को संजीवनी विद्या की प्राप्ति हुई है। इन सब वरदानों को अन्य कोई भी देव नहीं प्रदान कर सकता था।

इस पुराण में लिंगार्चन का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। लिंगार्चन की परम्परा संबंधी दो कथाएँ बतायी गयीं हैं। इनमें पहली कथा में ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा तथा दूसरी कथा में बड़े-बड़े ऋषियों द्वारा लिंगार्चन किया गया है। लिंगार्चन के अतिरिक्त भस्म के माहात्म्य को बताते हुए कहा गया है कि इसे धारण करने से व्यक्ति के सभी पाप छूट जाते हैं तथा इससे सभी प्रकार के अनिष्टों से बचाव भी होता है। इसी प्रकार शतरुद्रिय के जप से भी व्यक्ति पापों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। कापालिक व्रत में नग्न रहने तथा श्मशान में निवास करने के पीछे क्या तर्क हैं उनको भी बताया गया है।

अन्य पुराणों की भाँति इस पुराण में भी तीनों प्रमुख देवों की एकता का प्रतिपादन है। इसमें विष्णु एवं शिव की एकता पर विशेष बल दिया गया है।

(प्रस्तुत लेख आचार्य जगदीश शास्त्री द्वारा संपादित तथा मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली द्वारा 1973 में प्रकाशित 'ब्रह्माण्डपुराणम्' की प्रति पर आधारित है।)